शरीफ का घर जले तो.....................

शरीफ का घर जले तो अनेक लोग अपनी रोटी सेंकना भी शुरू कर देते है। यह देहाती कहावत पिछले दिनों दिल्ली मे प्रत्यक्ष देखने को मिली । एक बलात्कार की शिकार लडकी अस्पताल मे जीवन मरण के बीच झूल रही थी, तो यहां जन्तर मंतर पर कुछ महिलाएं अपने अधिकारों के लिये प्रदर्शन कर रही थी। प्रारंभ मे तो उन कथित अपराधियों को कठोर दण्ड देने तक प्रदर्शन सीमित था और जो ठीक भी था किन्तु शीघ्र ही वामपंथी बुद्धिजीवी महिलाओं ने प्रदर्शन को नारी मुक्ति के रूप मे बदल दिया और उसके बाद तो यह आंदोलन नित नये नये स्वरूप ग्रहण करता गया। कभी यह प्रदर्शन युवा पीढी के आंदोलन मे बदला तो कभी बलात्कार के विरूद्ध कठोर कानून के पक्ष मे तो कभी पुरातन और आधुनिक संस्कृति के रूप मे । यह सब होते हुए भी कभी आंदोलन बढते बलात्कार पर गंभीर विचार मंथन का रूप ग्रहण नही कर सका।

शीशे की तरह साफ है कि है कि सम्पूर्ण भारत मे बलात्कार की घटनाएं लगातार बढ रही है। बलात्कार बढने की भविष्यवाणी मै पिछले तीस चालीस वर्षो से लगातार करता रहा हूँ। बलात्कार तो बहुत तेजी से बढने थे किन्तु कुछ तो प्राचीन संस्कार रोक रहे थे और कुछ सामाजिक भय के कारण प्रकाश मे नही आ रहे थे अन्यथा जैसी हालत हमारी न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका ने कर रखी थी उसमे बलात्कार बढने के अतिरिक्त कोई अन्य परिणाम होना ही नही था। बलात्कार वृद्धि के चौतरफा अवसर पैदा किये गये । आधुनिक सामाजिक वातावरण ने युवा बच्चो को ही काम इच्छा के मामले मे समय से पूर्व ही बालिग बना दिया तो दूसरी ओर नासमझ अनुभव हीन नेताओ ने विवाह की उम्र बढाने जैसा कानून बनाकर समस्या को और ज्यादा गंभीर कर दिया। इन लोगो ने एक से ज्यादा विवाह पर भी कानूनी रोक लगा दी तो दूसरी ओर इन्होने वैश्यालय बार बालाओ पर भी आंशिक प्रतिबंध लगा दिये। हमारे न्यायालय तो इस मामले मे और भी ज्यादा बढ चढ कर अपनी आहुति देते रहे । इन्होने बच्चो पर पारिवारिक अनुशासन का हल्का सा दबाव भी उठाने मे बहुत जल्दवाजी दिखाई। प्रेम विवाहो को प्रोत्साहित करने मे हमारी अन्य इकाइयों के साथ साथ न्यायपालिका भी शामिल हो गई । सभी प्रयत्नो का सम्मिलित परिणाम था बलात्कार वृद्धि । यह परिणाम जो होना था वह हुआ । आग और पेट्रोल के बीच दूरी घटाने का परिणाम यदि विस्फोट हो तो दोष किसका।

बलात्कार और हत्या की दुर्घटना को एक सुअवसर मानकर आधुनिक महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिये संघर्ष के रूप मे बदल दिया। दिल्ली की सभी आधुनिक महिलाएं सडको पर निकल पडी। संसद की महिलाओ ने संसद मे अपने आंसू गिराये तो अन्य महिलाएं भी अपने अपने स्तर पर पूरी तरह सक्रिय रही। महिलाओं के विरूद्ध अपराधो मे दण्ड कठोर हो ,बलात्कार का दण्ड फांसी हो, महिलाओ को अलग से सुरक्षा दी जाय, जैसी अनेक भावनात्मक मांगे उछाली गई। आधुनिक महिलाओ ने यह सिद्ध करने की पूरी पूरी कोशिश की कि वे दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएं ही भारत की सारी महिलाओ का प्रतिनिधित्व करती है। उन्होने पूरे पूरूष वर्ग को ही अपना प्रतिद्वंदी, अपना शोषक सिद्ध करने मे कोई कोर कसर नही छोडी। टी वी पर आयोजित बहस मे ये महिलाएं इस तरह पुरूषो पर झपटती थी जैसे कि बहुत लम्बे समय बाद इन्हे अपने मन की भडास निकालने का सुअवसर प्राप्त हुआ हो । न कोई तर्क न कोई विचार सिर्फ आक्रोश ही आक्रोश । टी वी मे जब इनका आंदोलन दिखता था तो ऐसा दिखता था जैसे कि इनके दिल की आवाज निकल रही हो किन्तु जन्तर मंतर पर जाकर देखने पर यह भेद खुला था कि टी वी कैमरा का बटन दबाने से दस सेकेन्ड पूर्व इनकी आवाज निकलती थी और बटन दबने के दस सेकेन्ड बाद ही शान्त होकर किसी दूसरे टीवी कैमरे की प्रतीक्षा करने लगती थी। कई दिनो तक दिल्ली सहित देश के अनेक शहरो मे महिलाओ का यह प्रयत्न चलता रहा। परंपरागत महिलाएं या तो निर्लिप्त रही या इन महिलाओ पर अपने अपने परिवारो मे कटाक्ष करती रही। देश का पुरूष वर्ग इसे अल्पकालिक आक्रोश समझकर निकल जाने की प्रतीक्षा मे चुप रहा क्योकि स्पष्ट दिखता था कि पुरूषो का मैदान मे आना ज्यादा हानिकारक होगा और सारा टकराव स्त्री पुरूष के अलग अलग केन्द्र बना देगा जो इन महिलाओं का उद्देश्य है। ये महिलाएं सिर्फ इतना ही चाहती थी कि स्त्री पुरूष के बीच वर्ग संघर्ष बढे और उस संघर्ष से इन आधुनिक महिलाओ को कुछ लाभ हो भले ही समाज टूटे तो टूट जाये। राजनैतिक दलो ने भी बहती गंगा मे हाथ धोना ही ठीक समझा। सभी दलो ने अपनी अपनी महिला कार्यकर्ताओ को अग्रीम मोर्चे पर खडा किया। टी वी चैनल वाले भी अपनी अपनी महिलाओ को आगे लाने लगे । पूरा वातावरण स्त्री पुरूष के बीच विवाद की दिशा मे लगातार बढता रहा। आगामी 25 व

कुछ पुरूषों का धैर्य टूटा। राजस्थान पुलिस के एक सिपाही ने एक प्रदर्शन कारी लडकी को पहचानते हुए कटाक्ष किया कि दस दस ब्वायफ्रेन्ड रखती हो और यहां आकर नाटक करती हो। सिपाही के खिलाफ बहुत हो हल्ला हुआ किन्तु किसी ने यह जांच नही की कि जिस लडकी के विषय मे यह बात हुई वह लडकी वैसी ही है या नही। इसके बाद तो कई लोग अलग अलग भाषा मे बोलने लगे। आशा राम बाबू ने कुछ टिप्पणी की तो कैलाश विजय वर्गीय और मोहन भागवत ने कुछ दुसरी । उत्तराखंड के मुख्य मंत्री विजय बहुगुणा जी ने बहुत हिम्मत करके महिलाओ को सीख दी कि वे छ बजे शाम के बाद बाहर निकलने से बचे । सबसे गंभीर टिप्पणी शरद याहव की थी जिन्होने कहा कि सेक्स एक प्राकृतिक भूख होने से उसपर गंभीर चर्चा होनी चाहिये थी किन्तु कुल मिलाकर सतही बहस हो रही है। इसके बाद तो और भी लोग बोलने लगे और धीरे धीरे यह मामला महिला पुरूष के बीच बहस का रूप लेने लगा जिसमे आधुनिक महिलाएं कुछ दबने लगी । अब तो आम लोग कुछ आधुनिक महिलाओ की इस नाटक बाजी के खिलाफ आवाज उठाने लगे है।

बलात्कार एक अपराध है। पांच प्रकार के अपराध 1. चोरी डकैती लूट 2 बलात्कार 3 मिलावट कमतौल 4 जालसाजी धोखाधडी 5 हिंसा आतंक बल प्रयोग अपराध है। बलात्कार भी इन पांचो मे एक है। पांचो अपराध परिस्थिति अनुसार जघन्य हो जाते है और परिस्थिति अनुसार साधारण । दिल्ली बलात्कार प्रकरण भी परिस्थिति अनुसार जधन्य बना। यदि बल प्रयोग अपनी सीमाएं नही तोडता, सीमाएं तोडने मे भी अमानवीय कृत्य नही होता तो घटना जधन्य रूप नही लेती। इस घटना को आधार बनाकर हर बलात्कार को गंभीर कह देना उचित नही। दिल्ली गैगरेप के अपराधियो को फांसी दो की मांग उचित है किन्तु हर बलात्कार को जघन्य कृत्य बना दे यह ठीक नही । यदि हर बलात्कारी को फांसी की बात होगी तो बलात्कार के साथ हत्या जुडने पर क्या होगा ,फांसी किसी समस्या का समाधान न होकर समाज मे अपराधो के विरूद्ध भय पैदा करने का प्रतीक मात्र है। प्रतीक कठोर होना चाहिये किन्तु यदा कदा ही उपयोग करना चाहिये। बलात्कार के लिये दण्ड की वर्तमान मात्रा बढाना ठीक नहीं। अनेक बलात्कार तात्कालिक भावना वश होते है और अनेक योजनाबद्ध। दोनो मे अंतर करना होगा । यदि आपने बलात्कार को ज्यादा कठोर दण्ड बना दिया तो बलात्कार के बाद हत्याओ की बाढ आनी स्वाभाविक है। अभी एक जनवरी को ही शंकर गढ मे दो युवक और एक युवती मेले से एक ही साइकिल पर लौट रहे थे । रास्ते मे तीनो के बीच सेक्स क्रिया हुई । इस धटना को पीछे से आने वाले परिचितो ने देख लिया और लडकी ने देखकर लडको को रिर्पोट करने की धमकी दी । लडको ने अपराध और दण्ड की गंभीरता के परिणाम को भापकर लडकी की हत्या कर दी और लाश छिपा दी। हमे ऐसे परिणामो की भी कल्पना करनी होगी। बलात्कार को और ज्यादा गंभीर बनाने की अपेक्ष त्वरित न्याय ज्यादा कारगर होगा। साथ ही बलात्कार शब्द की परिभाषा भी ठीक करनी होगी। हर प्रकर के यौन अपराध को गंभीर बनाने की आदत छोडनी होगी। यौन उत्पीडन की घटनाएं कही अपराधी महिलाओ के लिये हथियार के रूप मे प्रयुक्त न होने लगे यह भी ध्यान रखना होगा। मेरा तो यहां तक अनुभव है कि किसी वर्ग विशेष को विशेष अधिकार देने के बहुत घातक परिणाम होते है। महिलाओ को दहेज के नाम पर जो विशेष अधिकार दिये गये उसके दुष्परिणाम जग जाहिर है। किरायेदारी कानून मे किराये दारो को विशेष अधिकार देने के दुष्परिणाम आज तक भुगत रहे है। किसी व्यक्ति को विशेष परिस्थिति मे कुछ विशेष सुविधाए दी जा सकती है। किन्तु विशेष अधिकार नही दिये जा सकते। किसी वर्ग को तो बिल्कुल भी नही। विशेष अधिकार इसलिये देना ठीक नही क्योकि हर वर्ग मे अच्छे और बुरे लोग होते है । ये विशेष अधिकार बुरे लोगो के लिये एक हथियार का काम करते है।

फांसी की आवाज बहुत जोर शोर से उठी। इस मांग मे ऐसी कुछ महिलाएं भी शामिल दिखीं जो बेअतं सिंह या अफजल गुरू के फॉसी के विरूद्व जोर शोर से आवाज उठाती रही हैं। बेअंत सिंह के हत्यारों को फॉसी हो या ना हो , अफजल गुरू का अपराध बडा था या छोटा इससे कोई मतलब नही। राजीवगांधी हत्या केश को भले ही लटकने दो किन्तु बलात्कारियों को तो तत्काल फांसी दो, ऐसी मांग गैर जिम्मेदार है। नकली दवा बनाने वालों के मुकदमे किनारे कर दो, बडे बडे भ्रष्टाचार करने वालों के मुकदमें बाद मे देखेगे, नक्सलवादी आतंकवादियो की चर्चा छोडो, किन्तु सारी न्यायिक प्रक्रिया रोक कर सिर्फ बलात्कार को पहले निपटाओ। ऐसी मांग गैर जिम्मेदाराना है।

ब्लैकमेल है। दबाव की राजनीति है। भारत का राज नेता वोटो की लालच मे ऐसी महिलाओं से दबकर जो समझौते कर रहा है अथवा न्यायपालिका भी ऐसे दबाव को जनाक्रोश समझने की भूल कर रही है, वह भविष्य मे गलत पणिाम दे सकता है। गंभीर अपराधो के लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट बनना चाहिए। जिसमें ब्लातकार के गंभीर अपराध भी शामिल है, किन्तु सारे गंभीर अपराधो को अलग करके ब्लात्कार के लिए फास्टट्रैक कोर्ट की मांग उचित नही। अपराध–अपराध होता है। चाहे वह किसी पुरूष द्वारा किया गया ब्लात्कार हो या किसी महिला द्वारा अपने प्रेमी के साथ मिलकर अपने पति के ग्यारह टुकडे करने की घटना। दोनो घटनाएं एक दिन की हैं, दोनो जघन्य है,फास्ट ट्रेककोर्ट के लायक है। प्राचीन काल मे सेशन कोर्ट का उद्देश्य यही था। किन्तु जब राशन और लकडी के मुकदमें भी गंभीर अपराध बनने लगे, दहेज जैसे मामले भी घास भूसे की तरह सेशन ट्रायल बनने लगे तो सेशन कोर्ट ओवर लोड हो गया और अब उसकी जगह फास्ट ट्रैक की मांग उठी। इनकी महत्ता और प्रभाव बनाये रखना होगा अन्यथा इनको भी ओवर लोडेड कर दिया जाएगा।

इस आंदोलन के समय तंत्र से जुडी सभी इकाइयां जोर शोर से पुलिस के खिलाफ आवाज उठा उठा कर अपनी चमडी बचाते दिखीं । घटना के बाद न्यायालय को काला शीशा याद आया । इसके पूर्व क्या न्यायपालिका नहीं जानती थी कि काले शीशों पर कार्यवाही नही हुई है। यदि नहीं जानती थी तो दोष किसका? सब जानते है कि पुलिस मोटी चमडी वाली होती है। उसे कितनी भी गाली दे दो वह उत्तर कभी देती ही नही न कभी प्रभावित होती है। हर नेता हर मीडिया कर्मी पुलिस की आलोचना करके अपनी जान बचाना चाहता है। जबकि स्पष्ट है कि ऐसी घटनाओ के विस्तार मे पुलिस को छोडकर बाकी सब दोषी है। न तो शादी की उम्र पुलिस ने बढाई है न ही वैश्यालय ओर बार बालाओ को रोकने का कानून पुलिस ने बनाया है। आप पुलिस पर राशन चोरी ओर बाल मजदूरी जैसे कामो का वजन डालते जाओ, न्यायालय दस दस वर्षो तक भी अपराधी को दण्ड न घोषित करे, राष्टपति फांसी दया याचिका को जीवन भर लटकाए रखे और सब मिलकर घटना के समय पुलिस को गाली देकर स्वय पाक साफ बच निकलने का प्रयास करें यह तिकडम निन्दनीय है। सभी दोषियो को बैठकर आत्म मंथन करना चाहिये। विफलता पूरे तंत्र की है। सम्पूर्ण तंत्र विफलता स्वीकार करे, बैठकर सोचे और आगे कुछ समाधान करे तभी कुछ बदलाव दिख सकता है।

कुछ ऐसे प्राकृतिक सामाजिक निष्कर्ष हैं जिनकी अनदेखी इस वर्तमान समस्या की जड मे है जैसे

1 महिला और पुरूष एक दूसरे के पूरक है विकल्प नही। दुर्भाग्य से पूरक और विकल्प के बीच का अंतर न समझने की भूल हो रही है।

2 महिला और पुरूष कोई अलग अलग वर्ग न हैं न हो सकते हैं। परिवार एक संगठन है । परिवार का कोई सदस्य परिवार की सहमति के बिना किसी अन्य संगठन का सदस्य नही बन सकता । महिला और पुरूष का परिवार की स्वीकृति के बिना किसी संगठन मे शामिल होना पूरी तरह असामाजिक कार्य है।

3 पति और पत्नी के बीच प्राकृतिक रूप से पति को आक्रामक और पत्नी को आकर्षक होना चाहिये।

4 स्त्री और पुरूष परिवार मे पति पत्नी ,मां, बेटा, भाई–बहन सहित अनेक भूमिकाओ का निर्वाह करते है। पति पत्नी एक दूसरे के सहभागी, मां श्रद्धा की पात्र तथा बहन सहयोग की पात्र होती है। जिस लडकी के साथ बलात्कार हुआ उसका भाई तथा पिता पुरूष होते हुए भी लडकी के पक्ष मे रहे। यह समस्या किसी भी रूप मे महिला पुरूष की समस्या नही है।

5 मौलिक अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के समान होते है। प्रत्येक व्यक्ति के इन अधिकारो की सुरक्षा राज्य का भी दायित्व है और समाज का भी। यदि किसी भी स्त्री या पुरूष के मौलिक अधिकारो का उल्लंघन परिवार का भी कोई सदस्य करता है तो वह अपराध है, किन्तु संवैधानिक अधिकारो की सुरक्षा समाज का दायित्व नही, सिर्फ राज्य का है। सामाजिक अधिकारो की सुरक्षा समाज और राज्य का कर्तब्य है दायित्व नही। मूल अधिकारो के मामले मे समानता का व्यवहार आपका अधिकार है किन्तु संवैधानिक और सामाजिक मामलो मे समानता का व्यवहार करना मजबूतो का कर्तब्य है आपका अधिकार नही।

6 स्त्री और पुरूष की प्रकृति आग और पेट्रोल के समान है। यदि दूरी बढाने का प्रयत्न होगा तो सृजन रूकेगा और घटाने का प्रयास होगा तो विध्वंस का खतरा बढेगा।

7 समाजके सामाजिक मामलों मे सरकार का हस्तक्षेप घातक होता है। सरकार को चाहिये कि वह बलात्कार को छोडकर अन्य मामले जैसे कन्या भ्रूण हत्या दहेज महिला उत्पीडन, वैश्यावृत्ति नियंत्रण बार बाला पर रोक विवाह की उम्र जैसे सामाजिक मामलों से स्वयं को बाहर कर ले।

8 परिवार व्यवस्था हमारे सहजीवन की पहली पाठशाला तथा प्रयोगशाला है । सरकार को परिवार व्यवस्था को बिल्कुल नुकसान नही पहुचाना चाहिये। प्रेम विवाह लडके लडकी का मौलिक अधिकार है किन्तु प्रेम विवाह को प्रोत्साहन देना एक आसामाजिक कार्य है। दुर्भाग्य से हमारी तीनो राजनैतिक इकाइयां ऐसी भूल कर रही है।

9 परिवार के किसी भी सदस्य को परिवार छोडने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये किन्तु परिवार मे रहते हुए परिवार का अनुशासन भी आवश्यक हैं। तलाक के मामले मे सरकार को कोई कानून नही बनाना चाहिये। तलाक प्रत्येक स्त्री पुरूष का मौलिक अधिकार है जिसमे पुरातन पंथी लोग नासमझी से बंधन लगाते है।

10 अपराध, गैर कानुनी और अनैतिक की अलग अलग व्याख्या होनी चाहिये । अपराधो मे अधिक कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिये जिसमे बलात्कार भी शामिल है । मृत्युदण्ड जारी रहना चाहिये तथा कभी कभी चौक पर खुली फांसी का भी उपयोग करना चाहिये।

यदि इन मुद्दो पर गंभीर विचार मंथन हो तो बलात्कार की घटनाएं भी रूक सकती है और समाज भी टूटने से बच सकता है। हम प्रबुद्ध नागरिक का कर्तब्य है कि वह ऐसे विचार मंथन को आगे बढाये।

पत्रोत्तर

1 श्री सत्यपाल शर्मा, बरेली–उत्तरप्रदेश

प्रश्न– केन्द्र सरकार ने गरीब परिवारों के बच्चो तथा महिलाओं के कुपोषण को दूर करने के लिये गांव गांव मे ऑगन बाडी केन्द्र खोलें है। इन केन्द्रो के माध्यम से पात्र व्यक्तियो को निशुल्क वितरण के लिये प्रतिमाह पोषाहार मिलता है तथा हाटकुक का पैसा मिलता है। पोषाहार पशु पालको को बेच दिया जाता है। गरीबों जरूरतमंदो को कुछ भी नसीब नही होता है। इस योजना मे राष्ट्रीय धन का घोर अपव्यय हो रहा है। इस ओर किसी का ध्यान नही है। योजना सफेद हाथी के समान कागजो तक ही सीमित है। लोकतंत्र के संचालक अंधे बहरे गुंगे है। केवल अखबारो मे सरकार वाहवाही लूटती है। धरातल पर कथनी करनी मे भारी अंतर है।

उत्तर– गरीब परिवारों, उनके बच्चो या महिलाओं की सहायता करना न सरकार का दायित्व होता है न समाज का। ये लोग तो अनावश्यक इनकी सहायता का दायित्व सम्हाल लेते हैं। जिस तरह बंदर रोटी काट कर खाने के उद्देश्य से छोटी रोटी वाली बिल्ली पक्ष मे आंसू बहाता है, उसी तरह ये राजनैतिक सामाजिक संस्थाएं भी किया करती है। प्रतिमाह पोषाहार जैसी सहायता देने के नियम मात्र इसलिये बनाये जाते हैं ताकि इन नेताओ तथा संस्थाओ के आश्रित भूखे न मर जावें । गरीबो और जरूरतमंदो के नाम पर अपने चहेते का पेट भरना ही इन योजनाओ का उद्देश्य होता है और ये योजनाए अपने उद्देश्य मे सफल होती है, तो इससे आपको कष्ट क्यो हुआ? इन योजनाओ के प्रचार के लिये अखबारो तथा अन्य मीडिया माध्यमो को भारी आर्थिक सहायता भी दी जाती है। अनेक सामाजिक संगठन खडे करके उनका भी पेट भरा जाता है जिससे यदि कोई इन बिचौलियां पोषक योजनाओं का विरोध करे तो ये बिचौलिये गरीब बच्चो महिलाओं के पक्ष मे आवाज उठाते रहें। ये सब बिचौलिये पूरी ताकत से अपना फर्ज भी पूरा करते रहते हैं। हम भी ऐसी योजनाओ का विरोध नही करते क्योकि जब सरकार का सारा धन बडे बडे मगरमच्छो के पेट मे जाता ही है तो कम से कम इस धन की जूठन तो इन तक मिलती रहती है।

2. श्री आनंद शंकर तिवारी – छतरपुर मध्यप्रदेश

प्रश्न– हम 15 अगस्त 1947 को आजाद हुये । 26 जनवरी 1950 को हमारा संविधान सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न **स्वरूप मे** लागू हुआ। संविधान मे राष्ट्रगान के रूप मे रवीन्द्र जी द्वारा लिखित राष्ट्रगान रखा गया। यह सर्वविदित है कि 20वीं सदी के प्रारंभ मे ब्रिटिश वायसराय भारत आये हुए थे, उनके सम्मान मे यह गीत गाया गया था।

जण–गण–मन अधिनायक जय हो भारत भाग्य विधाता

जव से भारत स्वतंत्र हुआ यहां प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली है। प्रजातंत्र मे अधिनायक शब्द का क्या महत्व है। अधिकांश लोग मन ही मन इससे आपत्ति करते हैं। अधिनायक का अर्थ निरंकुश । उस समय वायसराय के सम्मान मे कहा गया था कि वह संपूर्ण भारत के जन मन के अधिनायक यानी भाग्य विधाता है। **माई** बाप है। परंतु क्यों? आगे की पंक्तियो मे भी पंजाब सिंधु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंग"विभाजन के बाद सिंन्ध पाकिस्तान मे है लेकिन राष्ट्रगान मे सिन्ध का गुणगान करते है ऐसा क्यों?

उपरोक्त संकट का समाधान करने का कष्ट करें। मै आपकी पत्रिका ज्ञान तत्व का सक्रिय सदस्य हूँ । प्रत्येक पत्रिका मन से पढता हूँ । मै आपके आंदोलन व कार्यक्रमो मे भाग लेकर कुछ करना चाहता हूँ । आपका अनुभव व निर्देश चाहता हूँ। मै मूल मे व्याख्याता रहा हूँ। अब सेवा निवृत्त हूँ । आयु 75 वर्ष है। शारीरिक क्षमता है। कार्य करने का उत्साह है। आपके निर्देश की प्रतीक्षा है।

उत्तर– राष्ट्रगान का प्रश्न राष्ट्रीय समस्या हो सकती है जिसका समाज की समस्या से कोई सम्बंध नही। यह समस्या भरे पेट के गौरव की तो हो सकती है किन्तु खाली पेट के रोजगार से जुडी नही है। अतः हमारी प्राथमिकताओं मे यह मामला बहुत बाद मे आता है। फिर भी विचारणीय तो है ही। यह गीत गुलाम भारत मे ब्रिटिश अधिनायको की चापलूसी मे लिखा गया। यदि हम मान लें कि आज स्वतंत्र भारत का संविधान ही हमारा अधिनायक है और हम अपने संविधान की प्रशंसा मे यह गीत गाते है तो इस गीत का संदर्भ भी बदल जायेगा और कोई नई समस्या भी नही आएगी । सिंध प्रान्त पाकिस्तान का भाग है। यदि गीत मे सिंध भी जुडा है तो हमारे समक्ष कौन सी दिक्कत आ रही है। हमारे देश के नेताओं ने वास्तविक समस्याओ के समाधान की चिन्ता न करके कलकत्ता, मद्रास ,उडीसा, कालीकट, आदि के नाम बदलकर समाज का कितना भला किया यह आज तक मै नही समझ सका। भूखा पेट पहले रोजगार की लडाई लडे, विश्व व्यवस्था से प्रतिस्पर्धा करे, उसके बाद स्वाभिमान की चर्चा करें तो अच्छा होगा। आप कुछ करना चाहते हैं। छतरपुर मे श्री जी.पी गुप्ता

3 श्री बाबू लाल शर्मा धीरज, –शक्तिनगर बबेरू मार्ग काला कुआ बांदा उत्तर प्रदेश

विचार–श्रोता वक्ता ज्ञान निधि के आाधार पर आप उक्त के वक्ता और हम श्रोता, आपका उक्त परिचय। लेकिन हमको जो ज्ञान निर्गत किया गया उस पर कहीं सहमति तो कहीं असहमति है। अभी मंथन अपरिपक्व है, क्योंकि समाज का स्वरूप हमारे लिए अस्पष्ट है। "Society has no existence at all the Nature of society is pure , nice just and correct ' while the Nature of individual may be correct or corrupt 'Individual leads the society'

के आधार पर भ्रष्टों के हाथ ोंमे नेतृत्व है। इसीलिए 14 दिनो की ज्ञान यज्ञ की आवश्यकता रही। इस यज्ञ के प्रतिभागी चाहे जितने हैं कथन केवल आपका अर्थात व्यक्ति है। एक व्यक्ति के रूप मे आप हैं तो ज्ञान यज्ञ है। ऐसे ही हम हैं तो परिवर्तन और नियोजन संयोजन हैं। आपके और हमारे निष्क्रिय हो जाने के बाद जरूरी नही कि यह सब होता रहे।

दूसरे समाज के विभागों मे एक जनता जो निरीहता से ग्रसित परावलम्बी, दूसरे नागरिक जो प्रबुद्व और स्वावलम्बी है मे से नागरिक के भी तीन भाग। एक भाग वह जो जनता के लिए कार्यक्रम बना उसके लिए राष्ट् कोष से धन लाता है उसका 85 प्रतिशत बीच मे ही चुरा लेता है। दूसरे जो इस धन को शतप्रतिशत लगवाने को संघर्ष करता है। तीसरे 'कोई होई निरप हमे का हानि' के आधार पर तमाशा देखता है। समस्या संघर्षशीलों की संख्या के सीमित होने के साथ उनके संगठन की है। दस हजार की असंगठित आबादी को दस संगठित डकैत तबाह कर जातें हैं। यही है समस्या और समाधान है योग्यतम को व्यवस्था से जोड़ने की। आप और हम जैसे व्यक्तियों के एकमत हाने की।

तीसरे आज लोकतंत्र जिसे लोक नियंत्रित होना था वह तंत्र नियंत्रित लोक का रूप ले चुका है। वर्तमान पूरा संघर्ष लोक नियंत्रित तंत्र वाले लोकतंत्र मे लोक की औपचारिक भूमिका तय करने का है। इसी उद्देश्य से जनप्रतिनिधीयों के नियोक्ता मतदाताओं की आवाज को भारतीय मतदाता मंच के स्वयंभू संयोजक बनकर अपने सेदेश वाहक परिवर्तन से उठा रहे है। पिछले 35 वर्ष से हम नियोक्ता बन अपनी व्यवस्था दे रहे है। 17 साल से परिवर्तन के माध्याम से अपने विचार योजना एवं व्यवस्था अपने साथी नियोक्ताओ को संबोधित कर संम्प्रेषित कर रहे है।

आपके इस अंक मे ऐसा लगा कि आप भी मानते हैं कि मतदाता ही चुनने के कारण नियोक्ता, खर्चा देने के कारण दाता और नियंत्रक होने के कारण राजा है। लेकिन किसी अप्रत्याशित भय से अपने को नियोक्ता नही कह पा रहे है। हम नियोक्ता भाव को अंगीकर कर चुके हैं

इसलिए नियोक्ता ही हमारी भाषा मे व्यवस्था है।निर्देश तथा सुझाव है। केवल व्यवस्था दे रहे हैं यह पल भी नियोक्ता के रूप मे लिख रहें हैं।

हमारे समक्ष नित्यप्रति नये नये सुझाव आते है, ऐसा करें ऐसा ना करें ऐसा होना चाहिए वैसा नही आदि। इसी तरह प्रधानमंत्री, सांसद, सरकार एवं प्रबुद्व लोगों के आलेख भी उसी चाहिए की भाषा मे आते हैं। हम किसके भरोसे छोड़ दें अपने देश को? का प्रश्न उठा। पूरी जिम्मेदारी ले कौन? व्यवस्था की उपरी परत कमजोर लगी, चुनाव प्रणाली कोई थी ही नही । हमने ईजाद की । अब दागियों को निर्वाचित होने से रोकने की, विधि हम दे चुके हैं, क्योंकि हम एम्पलायर हैं, और यह हमारे अधिकार क्षेत्र मे आता है। जो हमारे समर्थक हैं, उनका साथ मिल रहा है। जबकि आपने नियोक्ता शब्द का कहीं प्रयोग नही किया। जानबूझकर या कोई संदेह, यह प्रश्न हैं। आपका अभिमत चाहिए कि इस व्यवस्था मे आप हैं कौन? तंत्र तो नही इसके बाद क्या हैं ? मंत्री/प्रतिनिधी पर की गई चुभकीयॉ चुभती है हमे, क्योंकि हम हैं उनके राजा, दाता, नियोक्ता और वे हमारे एम्पलाई' का भाव तो 35 वर्ष पुराना रहा लेकिन सत्रह साल पहले, स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती के पूर्व विचारकों की समीक्षायें आयी–उन्हे पढ़कर जरूर लगा कि सामने वाला राक्षस है या मनुष्य? अब तो स्थिति साफ है। तन–मन–धन लगाकर आपके कार्यक्रम में संत विजय कौशल महाराज जी की रामकथा मे, स्वामी रामदेव, अन्ना हजारे के सत्याग्रहियो के साथ हरिद्वार मे गायत्री परिवार के आयोजन मे तीन करोड़। सब के सब मनुष्य ही नही अच्छे मनुष्य हैं, । जो सरकारी किराया भत्ता से कहीं आते जाते हैं उनमें से भेद करने की जरूरत है।

सामने वाले को क्यों अपने को क्यों नही । हम कौन हैं जो साथ रहे प्रतिभागी की बात को अलग नाम तक ज्ञान तत्व मे नही आने देते। हमने तो एक अंक आपका सन्दर्भ लेते हुए छापा। आप तो केवल प्रशंसको की प्रश्नोत्तरी को छापते हैं। लोकतंत्र मे सम्वाद, विचार मंथन एक अनिवार्य व्यवस्था है। तंत्र मे लुप्त हुई, तभी तो हम 'नियोक्ता लोक' अलग अथक बताकर तंत्र पर आक्रमण सत्रह वर्ष से कर रहे हैं। होते कौन हो जब अपनी पगार चाहे जब मनमानी बढ़ा लेते हो? सवाल लोक के नियोक्ता का है। रियाया, प्रजा, जनता, वोटर का साहस ही नही ऐसे सवाल उठाने का। हॉ इस सवाल के उठने के बाद जनता मे से सोइ मनीषा, हताश के महासागर मे गोते खा रही मनीषा जगी और ताल ढोंककर नियोक्ता भाव लेकर उपर आ गई। एक नही सैंकड़ो संगठन 1997 के बाद नियोक्तापन के भाव की बाढ़ के बाद अस्तित्व मे आये हैं।

संविधान सम्मत बातें तब जब सुयोग्यों को प्रतिनीधित्व सौंप दें। इस समय की खास बात अपने मे सब तरह से पूर्ण इकाई गॉव की शिक्षा, सुरक्षा, को लेकर क्या किया जाए कि गॉव से पलायन रूके, आपसी सौहार्द्र बढ़े। दस वर्ष पहले तक 80 प्रतिशत आबादी गॉवो मे थीं, अब शहरों की 35 प्रतिशत बता गर्व किया जा रहा है। यह कैसे रूके। तंत्र से नही लोक इसमें क्या करें? अब हम गॉव मे हैं। समाधान समितियों का गठन करने मे लगें हैं। आपके भी अनुभव रहें हैं। इस मुद्दे पर एक अंक प्रकाशित करने का कष्ट करें। सम्वाद मे कोई त्रुटि हो तो क्षमा करें।

समीक्षा– आप जो भी कार्य कर रहे हैं वह बिल्कुल ठीक दिशा मे है। भारत मे इस तरह ठीक दिशा मे काम कर रहे पांच सात समूहों मे ही आपका भी समूह है अन्यथा देश मे समाज के लिये काम कर रहे हजारो संगठन तो समाज को तोडने का ही ज्यादा काम कर रहे हैं। मेरी ओर से आपको पूरा समर्थन और सहयोग रहेगा भले ही कुछ बातों पर हमारे आपके बीच असहमति भी क्यो न हो। सहमति के कार्यो पर समर्थन और सहयोग तथा असहमति पर संवाद जारी रहेगा। क्योंकि नीयत के मामले मे हमारे आपके बीच कोई अंतर नही है तथा नीतियों मे भी कोई मतभेद नहीं है। आंशिंक अंतर कोई महत्व नही रखता। संवाद के लिये आपका प्रमुख प्रश्न है कि हम अपने को नियोक्ता क्यो न माने । मै वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था मे स्वयं को नियोक्ता के रूप न मानकर गुलाम के रूप मे देखता हूॅ, क्योकि मेरे विचार मे नियोक्ता और गुलाम के बीच भारी अंतर होता है। यदि हम वास्तव मे नियुक्ति कर्ता है तो नियुक्त संसद नियुक्ति संबंधी नियम कैसे बना सकती है? संसद द्वारा बनाये गये नियम कानूनो के आधार पर ही हम उन्हे नियुक्त कर सकते है न कि स्वतंत्रता पूर्वक। यदि हम संविधान के नियोक्ता है तो आप बताइये कि संविधान मे संशोधन परिवर्धन के कितने अधिकार आपके पास है? यदि हम नियोक्ता है तो नियुक्त के अधिकारो की समीक्षा नियोक्ता करेगा या नियुक्त ही नियोक्ता के अधिकारो की समीक्षा करेगा? नियुक्त अपना वेतन भत्ता स्वयं किसी भी सीमा तक बढा सकता है और नियोक्ता से पूछना भी जरूरी नही किन्तु नियोक्ता देने को बाध्य है। यदि कोई मालिक अपने गुलाम को मालिक मालिक कह कर स्वयं मालिक के सभी अधिकारो का उपयोग करता रहे तो मै अपने को नियोक्ता न मानकर गुलाम ही मानूंगा। आप गॉवो मे काम कर रहेंहैं यह बहुत अच्छी बात हैं। कभी समय पाकर देखने की कोशिश करूंगा।

4. श्री यशपाल 'यश' सर्वदेशिक आर्य युवक परिषद राजस्थान प्रदेश

विचार–मै मोहन भागवत तथा कैलाश विजय वर्गीय के कथन का पूरा पूरा समर्थन करता हॅू। नारी स्वतंत्रता के प्रेमी बिना भावनाओ को समझे पूर्वाग्रहो से बात का बतंगढ बनाने के लिये उछल कूद कर रहे है । विजय वर्गीय ने लक्ष्मण रेखा पार ना करने की हिदायत दी है, ताकि दिल्ली जैसी दुर्भाग्यपूर्ण वीभत्स घटना की पुनरावृत्ति ना हो।

नारी पूजा से देवताओ का निवास तथा अपमान से सर्वत्र दुःखो को मानने वालो पर कीचड उछालकर दिल्ली हत्या व बलात्कार प्रकरण की गंभीरता को कम करना है। इंडिया और भारत की चर्चा का भाव स्पष्ट है। पश्चिमी संस्कृति को परिवार तोडक बताना या जिस परिधान से वासना बढती हो ,उन्हे रोका जाना न्याय उचित है? खाने पीने की आजादी का मतलब शराब पीकर सार्वजनिक स्थानो पर घूमना भी नही है? भारतीय संस्कृति को नष्ट करने वाले यही तो चाहते है । यदि इनके आचरण गलत हो तो आवाज उठाइये । भारतीय नारी कठिनाई मे

कंधे से कंधा मिलाकर भी लक्ष्मण रेखा पार करना नही चाहती। शालीनता नारी का आभूषण है। चटकारे लेकर बात बनाने वाले बडे बडे पत्रकारो पर संकट आया तो सिट्टी पिट्टी गुम हो गई थी। आधुनिकता को समर्थन करने की सजा जिसने भुगती है उनके दिल पर क्या बीती है,? ताली बजाने वाले चका चौध मे बेखबर है। आधुनिकता के नाम पर अश्लील पहनावा अंग प्रदर्शन कभी न्याय संगत नही हो सकता ।भारत की परिवार व्यवस्था को तोडने के प्रयास दुखद है। मिडिया का एक ग्रुप सुनियोजित तरीके से दिल्ली कांड को दबाने की मुहिम रच रहा प्रतीत होता है। संघ पर साम्प्रदायिक जैसे प्रश्न होना या लगना विचारणीय हो सकता है मगर नारी सम्मान पर लगाना नही चल सकता ।

भागवत जी का मै अनुयायी नहीं हूँ मगर उनके राष्ट्रवादी चिंतन जिसमे दिल्ली कांड पर आहत होकर पश्चिमी नंगे नाच पर टिप्पणी स्वाभाविक है। चंद चुलबुली बहन बेटियां द्वढ इच्छा शक्ति की इडिया मे हो सकती है मगर बायोलिजिक (जीव वैज्ञानिक) सब नही हो सकती। सहशिक्षा सहकार्य मे दिल्लगी का कोई स्थान नही है। अलूप वस्त्र भडकीले पहनावे तथा अंग प्रदर्शन को ही लक्ष्मण रेखा कहा है, इसमे इतनी हाय तौबा जरूरी नही है। हमारे देश का गौरव दुनियां ऐसे ही नही मानती थी। हमारे चरित्र और आचरण से शिक्षा लेते थे । बेहतर होगा भारत को भारत रहने दे तथा दुष्कर्मियो को सबक सिखाये। सभी मनसा वाचा कर्मणा आत्मबल से सुगठित रहे। हॉ अगर भारत यानि गांव मे ऐसी दुष्कर्म ज्यादा होते है और इनमे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से इनका अपराधियो को समर्थन मिलता हो तो हम आर्य समाजी या मै स्वयं किसी भी बलिदान को तैयार हूँ । मेरा ऐसे मामलो मे सबसे विनम्र अनुरोध है कि नारी उत्पीडन की आग मे किसी को राजनैतिक रोटी नही सेकनी चाहिये। इस पाप को परमात्मा कभी माफ नही करेगा। विश्वगुरू भारत की छवि कितनी धूमिल हुई है तथा इस तरह के वाद विवादो से सामान्य महिला को कितना गहन आत्मिक कष्ट हो रहा है। वातानुकूलित स्टुडियो मे बैठकर ताली बजाने वालो या मीडिया के सामने मोमबत्ती जला कर्तब्य की इति श्री समझने वालो को क्या पता।

समीक्षा— मोहन भागवत जी ने जो कुछ कहा उसके दो अर्थ निकले । एक वह जो उनका आशय था और एक वह जो उनके विरोधियों का आशय था । भागवत जी ने आधुनिक विवाह पद्धति का विस्तार से वर्णन किया था जिसे विरोधियो ने उनका आशय कह कर प्रचारित कर दिया। यशपाल जी ने भागवत जी के वास्तविक आशय का समर्थन किया है।

भागवत जी ने विवाह को एक कांट्रेक्ट कहा जिसका आधुनिक लोगों ने विरोध किया। सच बात तो यह है कि विरोध करने वाले खुद ही नही समझ सके कि वे किसका विरोध कर रहे है? यदि भागवत जी ने विवाह को कांन्टैक्ट कहा तो आधुनिक संस्कृति को तो भागवत जी की प्रशंसा करनी चाहिये थी कि उन्होने अपने पुरातन पंथी विचार बदल कर विवाह को कांन्टैक्ट कहा। इसमे विरोध कहां से घुसा ? यदि पुरातन पंथी विरोध करते कि भागवत जी ने ऐसा कैसे कहा तब तो कुछ समझ मे भी आता किन्तु यशपाल जी जैसे सभी लोग तो उनके कथन का भावार्थ समझकर समर्थन कर रहे है।

भागवत जी के कथन का जो भावार्थ है और जिसका समर्थन आपने किया है मै उसे ठीक नही मानता । भारत की प्राचीन विवाह पद्धति एक अटूट जन्म जन्मान्तर का संबंध था जो हमारा आदर्श रही किन्तु धीरे धीरे आधुनिक समाज मे वह अव्यावहारिक होती जा रही है। अव्यावहारिक आदर्श लम्बे समय तक नही टिकते। उनमे गंभीर विकृतियां आने का खतरा भी रहता है। अतः यदि विवाह को कांन्ट्रैक्ट भी मानकर उसका ईमानदारी से पालन हो तो कोई हर्ज नही। विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है जिसमे सरकार को हस्तक्षेप नही करना चाहिये।

मै आज तक नही समझा कि तलाक की स्वतंत्रता मे कानून की बाधा क्यो है? किसी भी व्यक्ति का परिवार मे रहना या न रहना उसकी स्वतंत्रता है । आदर्श स्थिति तो यह है कि परिवार न टूटें किन्तु यदि किसी परिवार को टूटना ही है तो उसे जोर जबरदस्ती रोकना तो और भी ज्यादा घातक है। व्यावहारिक स्थिति तो यह है कि हम ऐसे टूटने वाले परिवारों को न टूटने हेतु सहमत करे किन्तु किसी भी रूप मे उनकी स्वतंत्रता मे हस्तक्षेप न करे। सरकार को तलाक संबंधी सारे कानून हटाकर सब काम समाज पर छोड देना चाहिये। कुछ लोग कहते है कि इससे तो परिवार बहुत जल्दी टूट जायेगें। मै इससे सहमत नहीं । यदि हमारी परिवार व्यवस्था मे गुण होगे और उसकी समाज को आवश्यकता होगी तो समाज उसे मजबूत करेगा या बचाकर रखेगा अन्यथा उसे कल की जगह आज ही टूट जाने दीजिये। कानून की जंजीरो मे बांधकर अव्यावहारिक प्रथाओ को बचाने का कोई औचित्य नही।महिलॉए कभी पूज्य रही होंगीं। वैसे मेरे विचार से तो कभी ऐसा नही रहा। यदि दुर्गा पूज्य थीं तो मंथरा और कैकई घृणा की पात्र भी रही है। नारी या पुरूष गुणो के कारण पूजे जा सकते हैं जाति या लिंग के कारण नहीं। समाज मे स्त्री हो या पुरूष सब को समान अधिकार से देखना ज्यादा अच्छा रहेगा। सब को अपने अपने पारिवारिक अनुशासन मे रहते हुए पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। कपडे. छोटे हो या बडे यह महत्वपूर्ण मुद्दा नही है। भारत की पहचान दुनिया मे ना कपडो के आधार पर है ना संस्कृति के आधार पर। भारत की पहचान दुनिया मे विचारों के आधार पर है जो संस्कृति से कुछ भिन्न विषय है।

कैलाश विजय वर्गीय जी ने बलात्कार की घटना का पूरा पूरा विरोध करते हुए महिलाओ को भी कुछ सीख दी। उन्होने कहा कि समाज मे अनेक रावण भी घूम रहे है। यदि आप लक्ष्मण रेखा को पार कर रही है तो आपके समक्ष खतरे भी बढ सकते है। रामायण काल के इस उदाहरण मे गलत क्या हैं? क्या आज समाज मे रावण नही घूम रहे है? क्या सीता ने लक्ष्मण रेखा पार करके भूल नही की थी? इसका अर्थ यह तो नही कि राम ने सीता को छोड दिया हो । राम ने सीता को छुडाने के लिये इतना बडा युद्ध भी किया किन्तु राम के यह कहने से

कही सीता का अपमान नही होता कि लक्ष्मण रेखा को पार करना तुम्हारी भूल थी। एक व्यक्ति अपने हीरों का हार सडक किनारे लावारिस रखकर घूम रहा है और हार चोरी हो जाता है। दूसरी ओर एक व्यक्ति अपना हार कमरे मे सुरक्षित रखता है और हार चोरी हो जाता है, तीसरी घटना मे एक व्यक्ति अपना हीरे का हार अपने पास सुरक्षित रखा है किन्तु कोई अपराधी मार पीट कर छीनकर ले जाता है। तीनो ही घटनांए अपराध है किन्तु तीनो की गंभीरता अलग अलग है और तीनो का दण्ड भी अलग अलग है। समाज को यह कहने का पूरा पूरा अधिकार है कि अपना हार इस तरह लावारिस छोडकर जाना भी ठीक नही। इसका यह अर्थ तो नही हुआ कि हम हार चोरी करने वाले का समर्थन कर रहे है किन्तु यदि ऐसी सलाह पर भी आपको कहीं बुरा लग रहा है तो फिर आपके बुरा लगने का कोई न कोई और कारण होगा जिसकी खोज करनी चाहिये।

मै सात जनवरी को टीवी पर बहस सुन रहा था। एक मौलाना साहब ने सहशिक्षा के विरूद्ध कुछ सामान्य सी टिप्पणी कर दी। एंकर सहित अन्य सभी प्रतिभागी मौलाना पर ऐसा चढ बैठे जैसे उन्होने कोई बडा अपराध कर दिया हो । जिस तरह आपको सह शिक्षा का समर्थन करने की स्वतंत्रता है वैसे ही किसी दूसरे को विरोध करने की भी स्वतंत्रता है। मै स्वयं भी सहशिक्षा की स्वतंत्रता का पक्षधर हूँ । जो परिवार अपने बच्चो को साथ साथ पढाना चाहे वे पढा सकते है और जो न पढाना चाहे वे अलग अलग भी पढा सकते है। सरकार का काम नही कि वह सह शिक्षा का पक्ष ले या विरोध करे। दिक्कत तो तब खडी होती है जब सहशिक्षा के पक्षधर या विरोधी अपना अपना पक्ष मजबूत करने के लिये स्थापित सीमाओं को तोडते है। आलोचना करने का आपका अधिकार भी है तथा स्वतंत्रता भी किन्तु आलोचना की लक्ष्मण रेखा को तोडकर जब आप विरोध करना शुरू कर देते है तब कठिनाई होती है । एक ओर तो आधुनिक महिलाएं सहशिक्षा की भी पक्षधर है और संसद या कार्यालयो मे साथ साथ काम भी करना चाहती है तो दूसरी ओर महिलाओ को महिला थाना अलग चाहिये तो अस्पतालो मे महिला ही डाक्टर चाहिये। हर थाने मे महिला दरोगा अलग चाहिये तोरेल मे बैठने के लिए अलग डिब्बा भी चाहिए । ऐसा दुहरा आचरण क्यों? आपके महिला होने का यह अर्थ नही कि आप कोई ऐसी विलक्षण वस्तु है जिनके लिये बहुत सावधानी पूर्वक विशेष व्यवहार रखना आवश्यक है। जिस तरह भारत के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार है उसी क्रम मे आपको भी समान अधिकार प्राप्त है। यदि किसी को विशेष चाहिये तो वह उसका अधिकार नही । वह समाज से ऐसे विशेष अधिकार के लिये निवेदन मात्र कर सकते है न कि कोई दबाव डाल सकते है। मेरे विचार से दिल्ली बलात्कार प्रकरण के बहाने आधुनिक महिलाओं का आंदोलन कही न कही अपने घोषित उद्देश्यो से भटक रहा है अन्यथा मोहन भागवत जी या कैलाश विजय वर्गीय जी की बात ऐसी नही थी जिसका इस तरह विरोध किया जा सके।

5 श्री प्रेम शुक्ल, विस्फोट डाट काम से

विचार—शैतान की औलाद ने पंद्रह मिनट मे हिन्दुओ को समाप्त करने की चुनौती दी है यदि पंद्रह मिनट के लिये पुलिस विभाग चुप हो जावे । आज वे लोग चुप क्यो है जो शिव सेना प्रमुख की मुस्लिमो का मताधिकार छीनने की जायज मांग के विरूद्ध भी इतना कोलाहल करते रहे। तथाकथित पालतू राष्ट्रवादी मुसलमानो के मुंह भी बन्द रहे। सहमत और शबाना आजमी ने जरूर कुछ कहा किन्तु वह भी र्प्याप्त नही था। अकबरूद्दीन का बयान कोई साधारण बयान नही था। कहीं न कहीं सउदी अरब और पाकिस्तान प्रायोजित अलगाव वाद का भाग हो सकता है जिसका पहला चरण कश्मीर दूसरा आसाम तथा तीसरा दक्षिण भारत हो सकता है। कश्मीर का वातावरण तो सर्वविदित ही है। असम मे भी जिस तरह आग लगाई गई वह स्पष्ट हो चुकी है। बोर्डो जनजाति और बंगलादेशी मुसलमानो के बीच के टकराव के नाम पर बंगलोर समेत देश के अनेक भागो मे दंगे हुए थे। अब अकबरूद्दीन का बयान संभवतः इस अभियान की चौथी कडी होगी।

एम आई एम स्वतंत्रता के पूर्व से ही सक्रिय रही है। उसने स्वतंत्रता के समय भी हैदराबाद के हिन्दुओ को मारने के लिये डेढ लाख रजाकारो की फौज बनाई थी। अकबरूद्दीन अब भी वैसे ही सपने देख रहा है। वह नही जानता कि उस समय सरदार पटेल के नेतृत्व मे इनकी कैसी दुर्गति हुई थी।

कांगेस पार्टी राजनैतिक स्वार्थ के कारण इसकी हर धमकी को चुपचाप सुनती रही अन्यथा इस हराम पिल्ले की क्या ताकत जो वह इतना जहर उगले। मै स्पष्ट कर दू कि यदि कांग्रेस पार्टी इसी तरह चुप रही और हिन्दुओ का गुस्सा भडका तो कांग्रेस को लेने के देने पड जाएंगे।

समीक्षाः— आंध्र प्रदेश विधान सभा के विधायक अकबर उवैसी ने जान बूझकर योजना पूर्वक हिन्दुओं के लिये अपमान जनक शब्दों का प्रयोग करते हुए मुसलमानों की एक बैठक में कहा कि भारत में मुसलमान पचीस करोड़ होते हुए भी सौ करोड़ हिन्दुओं की अपेक्षा ज्यादा भारी हैं। यदि एक घंटे के लिये भी पुलिस को चुप करा दिया जाये तो ये मुसलमान सौ करोड़ हिन्दुओं से आसानी से निपटा सकते हैं। श्री अकबर ने मीटिंग में और भी अनेक भड़काउ बातें कहीं जो उन्हें नहीं कहनी चाहिये थीं लेकिन उन्होंने ये बातें जान बूझकर स्वयं को हाई लाइट करने के ही उद्देश्य से कही थीं। उनका उद्देश्य था कि उनके भाषण की हिन्दू समाज में प्रतिक्रिया हो जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दू और मुसलमान के बीच साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण हो तथा वे स्वयं मुसलमानों के नेता बन जाये। भारत का आम हिन्दू भी अकबर का उद्देश्य समझता था और इसलिये कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई क्योंकि ऐसी आपत्ति जनक बातें बोलकर श्री अकबर ने हिन्दुओं का कोई नुकसान नहीं किया है। यदि किसी का कोई नुकसान किया है तो आम मुसलमानों का, जो ऐसी भाषा को उचित नहीं समझते।

किन्तु साम्प्रदायिक हिन्दुओं को यह वक्तव्य एक सुअवसर दिखा। उन्होंने इस वक्तव्य को इस उद्देश्य से हवा देनी शुरू की कि इससे कुछ और हिन्दू उनके संगठन के पक्ष में हो जायेंगे। स्पष्ट है कि श्री अकबर ने जो भी कहा वह हिन्दुओं के लिये कहा न कि शिवसेना, विश्व हिन्दु परिषद या बजरंग दल जैसे संगठनों के लिये। पता नहीं इन्हें बुरा क्यों लगा? जब आपने हिन्दू मान्यताओं को छोड़कर पृथक संगठन खड़ा कर लिया तो आपको इस बात से क्या मतलब कि श्री अकबर ने हमारे लिये क्या कहा। आपको न तो हिन्दुओं ने अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया है न वकील। फिर आप बेमतलब इस मामले में उछलकूद कर रहे हो। श्री अकबर ने जो कुछ कहा वह मुसलमानों को समाज में और ज्यादा अलग थलग करेगी। अनेक मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने सामने आकर उनके ऐसे जहरीले भाषण का विरोध भी किया है। यह उनका आन्तरिक मामला है। उससे दूसरों का क्या संबंध?

मेरे विचार में यह भाषण किसी कानूनी अपराध की श्रेणी में भी नहीं आना चाहिये। अकबर ने कहा है कि हम सौ करोड़ हिन्दुओं से निपट सकते हैं। उन्होंने सिर्फ विचार व्यक्त किया है न कि कोई क्रिया की है। उनके भाषण की आलोचना तो हो सकती है किन्तु कोई विरोध नहीं हो सकता क्योंकि विरोध तो क्रिया का होता है, अभिव्यक्ति का नहीं। इस भाषण में मुसलमानों को उकसाया गया है न कि किसी को गाली दी गई है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मामूली दुरूपयोग भी हो तब भी उसको ज्यादा आगे बढ़ाने का काम वही लोग करते हैं जिन्हें उसका लाभ उठाना हो। लाभ उठाने वाले दिखने भी लगे हैं। संभवतः आपका भी वैसा ही उद्देश्य रहा हो तभी आपने इतनी चिन्ता की अन्यथा मुझे याद नहीं जब आपने कभी राजठाकरे या बाल ठाकरे के जहरीले भाषणों की भी कोई पूछ परख की हो। मेरा निवेदन है कि श्री अकबर ने जिस उद्देश्य से यह भाषण दिया, आपकी चुप्पी उन्हें उद्देश्य पूरा नहीं करने देगी। आप अपने लाभ के लिये अकबर का उद्देश्य पूरा होने में मदद करें यह ठीक नहीं।

मैं तो शान्तिपूर्ण मुसलमान भाइयों से भी निवेदन करूंगा कि वे ऐसे साम्प्रदायिक तत्वों के उद्देश्य पूरे न होने दें जो समाज को हिन्दू मुसलमान में बांटकर अपना उद्देश्य पूरा करना चाहते हों। इतना अवश्य दिखता है कि तथा कथित धर्म निरपेक्ष लोगों द्वारा ऐसे जहरीले भाषण की जो आलोचना होनी चाहिये थी वह नहीं हुई। धर्म निरपेक्षों की चुप्पी उन्हें अविश्वसनीय बनाती है यह ध्यान रखना चाहिये।

ऐसा लगता है कि श्री अकबरूद्दीन और श्री प्रेम शुक्ल जी पिछले जन्म में या तो एम. आई. एम. के सदस्य रहे होंगे अथवा शिवसेना के। क्योंकि दोनों की भाषा एक है, दोनों का स्वार्थ एक है। दोनों ही शान्तिप्रिय हिन्दुओं मुसलमानों को साम्प्रदायिकता की आग में झोंकना चाहते हैं। दुर्भाग्य से दोनों के व्यक्तिगत संस्कार एक होते हुए भी जन्म अलग अलग परिवार में होने से दोनों के संगठन अलग अलग हो गये होंगे। आप इस मामले में जो सलाह दे रहे हैं वैसी ही सलाह पूर्व में देश का बंटवारा करा चुकी है। उस समय भी आप जैसे लोगों ने हिन्दुओं की बात न सुनकर टकराव का रास्ता चुना। यदि उस समय का पूरा हिन्दू आपकी बात मान लेता तो अंग्रेजों की चाल सफल हो जाती। भारत गृह युद्ध में फंसकर स्वतंत्रता से हाथ धो बैठता। स्वतंत्रता के बाद फिर से वैसे ही विभाजन की स्थितियां बन रही है। अकबरूद्दीन तथा आप सरीखे लोग हिन्दुओं और मुसलमानों के दो गुट बनाकर टकराव के मार्ग पर जाना चाहते हैं जिसमें हिन्दू कमजोर पड़ेगा भले ही उसकी संख्या कितनी भी ज्यादा क्यों न हो। यदि ध्रुवीकरण हिन्दू मुसलमान के बीच न होकर शान्तिप्रिय और साम्प्रदायिक के बीच हुआ तो हर हालत में हिन्दू मजबूत पड़ेगा। स्पष्ट है कि ऐसा ध्रुवीकरण न अकबर जी को पसन्द है न आपको क्योंकि आपको बम्बई और अकबर को हैदराबाद की सत्ता चाहिये भले ही देश गृह युद्ध में फंस जाये। हिन्दुओं और मुसलमानों को ऐसे तिकड़म बाजों को पहचान लेना चाहिए।

समीक्षा ज्ञानतत्व दो सौ अंठावन की

प्रश्न— आपने अपने लेख में लिखा है कि जो प्राचीन परंपराएँ हैं उनमें अनेक अवैज्ञानिक हैं जबकि जो आधुनिक परिवर्तन हो रहे हैं उनमें अनेक असामाजिक तथा स्वार्थ पूर्ण हैं। यह तय ही नहीं हो पा रहा कि हम क्या करें?

उत्तर— यह सही है कि वर्तमान परिस्थितियों में यह तय करना ही कठिन है कि क्या ठीक है और क्या गलत। यह तय करना भी कठिन है कि ऐसे समय में क्या करें। किन्तु इन सबके बाद भी कुछ न कुछ मार्ग तो तलाशना ही होगा। अन्यथा यदि इसी तरह चलता रहा तो स्वार्थ प्रधान लोग दो गुटों में बंटकर लम्बे समय तक हमारा शोषण करते रहेंगे। इसलिये हमें व्यवस्था परिवर्तन के मार्ग पर चलना होगा जिसके कुछ सूत्र हैं (1) हर धूर्त चाहता है कि संचालक और संचालित के बीच की दूरी लगातार बढ़ती रहे। संचालक बुद्धि प्रधान हों तथा संचालित भावना प्रधान। कुछ लोग राजनैतिक समूह बनाकर ऐसा ध्रुवीकरण करते हैं तो कुछ लोग धर्मगुरू बनकर। दोनों के मार्ग अलग अलग हैं किन्तु उद्देश्य एक ही है। दोनों ही चाहते हैं कि समाज में विचार मंथन की प्रक्रिया कमजोर हो तथा प्रचार के प्रभाव से आम लोग निष्कर्ष निकालने लगें। दोनो ही समूह विचार मंथन को कमजोर करके अपनी सारी शक्ति प्रचार मे लगाते है क्योकि प्रचार विचारो को कमजोर करने मे उनकी मदद करता है। दोनों ही चाहते हैं कि समाज दूसरों पर निर्भर रहे और कभी स्वावलम्बी न हो।

मुझे याद है कि वर्तमान में भारत में एक स्थापित गांधीवादी हैं प्रोफेसर रामजी सिंह। वरिष्ठ गांधीवादी, धाराप्रवाह वक्ता, वाराणसी की गांधीवादी शिक्षण संस्था के डायरेक्टर आदि। उन्होंने एक बार मुझे डांटते हुए कहा कि विचार मंथन जैसे बेमतलब के काम में क्यों लगे रहते हैं? विचान मंथन तो बहुत हो चुका है। अब तो क्रिया की जरूरत है। मैंने उन्हें कहा कि आप सब लोग तो क्रिया में लगे ही हुए हैं। आप गांधीवादी भी क्रिया में लगे हुए हैं और नक्सलवादी भी। जमायते इस्लामी के लोग भी क्रिया में ही लगे हैं और संघ परिवार शिव सेना वाले भी। सारे कांग्रेसी भी सक्रिय ही हैं और भाजपा वाले भी। जब इतने लोगों के साठ वर्षों से दिन रात सक्रिय रहते हुए भी आज देश

और समाज का यह हाल है तो सिर्फ मेरे सक्रिय न होने से भी कितना नुकसान हो जायेगा? ऐसा कहने वाले रामजी सिंह जी कोई अकेले नही है। आपको गली गली मे ऐसी सक्रियता की सलाह देने वाले मिल जायगे। मुझे तो लगता है कि बिना विचार के सक्रियता निष्क्रियता से भी ज्यादा घातक होती है। इसलिये मेरा पहला सुझाव है कि पहले विचार मंथन किया जाये तभी क्रिया करें।

दूसरा सुझाव है कि यदि आप वर्तमान राजनैतिक सामाजिक अव्यवस्था से लाभ उठाने की इच्छा नहीं रखते हैं तो कृपया न किसी संगठन के सदस्य बनें न किसी संगठन की मदद करें। वर्तमान समय में कोई भी संगठन समाज के हित में कुछ नहीं कर रहा। सभी संगठन अधिकार और धन की छीना झपटी में लगे हुए हैं। कुछ संस्थाऍं ऐसी जरूर हैं जो ठीक ठाक हैं किन्तु उनकी भी संख्या घटती जा रही है। मेरे जीवन की इतनी सफलता का एक कारण यह भी है कि मैंने सत्तावन वर्षों में न कोई संगठन बनाया न किसी को चन्दा दिया न मांगा। यहॉं तक कि भारत चीन युद्ध के समय भी मैंने कोई चन्दा देने से इन्कार कर दिया था। इसी तरह मैंने न कभी हड़ताल की न कराई। यहॉं तक कि हमारे पूरे शहर नें चन्दा और हड़ताल पर पूरी तरह रोक लगा रखी थी। परिणाम हुआ कि हमारे शहर में राजनैतिक धार्मिक परजीवी भी नहीं पनप सके और समाज सेवा के नाम पर नई नई दुकानें भी नहीं खुल सकीं।

तीसरा सुझाव है कि आप जब तक अन्तिम रूप से किसी नतीजे तक न पहुॅंच जायें तब तक किसी भी पुरातन या आधुनिक धारणा के पक्ष विपक्ष में जोर देकर न बोलें। यदि आवश्यक हो तो सिर्फ अपना विचार बता दें। मैं आर्य समाज से जुड़ा रहा। आर्य समाज भूत प्रेत तंत्र मंत्र के विरूद्ध है। मैंने यह कभी नहीं कहा कि यह सब गलत ही है क्योंकि मैं स्वयं अन्तिम रूप से नहीं जानता कि यथार्थ क्या है। फिर भी यदि किसी ने पूछा तो मैंने इतना ही कहा कि मैं तो भूत प्रेत तंत्र मंत्र को नहीं मानता। यदि होते भी होंगे तो मुझे तो कभी नहीं दिखे। कभी भी सुनी सुनाई बात को अपना अनुभव बताने की भूल नहीं करनी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसी गलत पुरानी विचार धारा पर चलने की भूल कर रहा है या किसी अच्छी पुरानी परिपाटी को छोड़कर गलती कर रहा है तो उसे विचार बदलने हेतु जोर मत डालिये। हो सकता है कि आपका ज्ञान अधूरा हो जो उस विचारे को परेशानी मे डाल दे।

चौथा सुझाव यह है कि किसी व्यक्ति को अपना मार्गदर्शक या गुरू घोषित मत करिये। आप किसी की भी सलाह लें यह बुरा नहीं किन्तु अन्तिम निर्णय आप करिये। गुरू मानने के कारण लाभ कम और नुकसान ज्यादा होता है। ऐसे गुरू कभी कभी आपको कुछ दुर्गुणों से मुक्त भी कर देते हैं जो अच्छी बात है किन्तु आवश्यक नहीं कि आप उन्हें हर बात के लिये गुरू मान लें। हर धूर्त गुरू महिमा बता बता कर आपको ठगेगा। ध्यान रहे कि कोई भी सन्त स्वयं को गुरू और आपको शिष्य बनने हेतु नहीं कहेगा। यदि कहता है तो सतर्क हो जाइये। ऐसे धूर्त समाज में अपने एजेन्ट छोड़कर रखते हैं। ऐसे एजेन्टों से भी सतर्क रहिये।

ऐसी अनेक बातें हैं जिनमें से कुछ मैंने आपको बताई हैं।

प्रश्न– जाति प्रथा रूढ़ कैसे बनी? भारत में जातिवाद मजबूत हुआ या कमजोर?

उत्तर– प्राचीन समय में वर्ण गुण कर्म स्वभाव पर बनते थे और जातियां वर्ण के अन्तर्गत किये जाने वाले कर्म पर। किसी भी पालक की गुरूकुल में शिक्षा होती थी। गुरूकुल का आचार्य बालक की योग्यतानुसार आठ वर्ष में ब्राम्हण, दस वर्ष में क्षत्रिय और बारह वर्ष में वैश्य घोषित करके उन्हें तदनुसार अलग अलग प्रकार के यज्ञोपवीत देकर उनका वर्ण घोषित कर देता था। शेष यज्ञोपवीत विहीन बालक शूद्र या श्रमिक माने जाते थे। ये बालक यदि गुरूकुल में नहीं गये तो गांव का पुरोहित ऐसा करता था। ये बालक अपने अपने वर्ण के भीतर भी जो कार्य करते थे वह उनकी जाति बन जाती थी। जन्म से न वर्ण होता था न जाति। धीरे धीरे ये परीक्षाऍं लुप्त होती गई और जन्म के आधार पर वर्ण और जाति बनने लगीं जो एक विकृति थी। आज भी लालबहादुर शास्त्री के नाम पर उनका आगे आने वाला पूरा परिवार स्वयं को शास्त्री लिखना शुरू कर दे तो यह रूढ़ व्यवस्था हो जायेगी। जबकि शास्त्री एक डीग्री है किसी परिवार की पहचान नही ।

अब वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था को उसी रूप से जीवित करना संभव नहीं यद्यपि किसी और नाम से उस व्यवस्था को लाना आवश्यक है। यदि बीच में अम्बेडकर का स्वार्थ और नेहरू की भूल नहीं घुसती तो अब तक वर्ण और जाति व्यवस्था टूट गई होती। जाति की वैधानिक मान्यता समाप्त करके समान नागरिक संहिता लागू हो जाये तो नये तरीके से कर्म आधारित जाति अर्थात् डॉक्टर अलग, वकील अलग और नेता अलग जाति बन सकते हैं।

स्वतंत्रता के बाद भारत में जाति व्यवस्था कमजोर हुई है और जातिवाद मजबूत। स्वतंत्रता के उच्च वर्ण द्वारा पूर्व वर्ण और जाति की दोष पूर्ण व्यवस्था के दण्ड स्वरूप पिछड़ी जातियों के लोगों को दस वर्ष के लिये जो विशेष सुविधा दी गई उस सुविधा को उन्होंने अपना अधिकार मान लिया। जिस प्रकार उस समय के बुद्धिजीवियों ने श्रमशोषण के उद्देश्य से शूद्र नामक एक जाति बना दी थी और आगे के लम्बे समय के लिये उन सुविधाओं को अपनी पीढ़ियों के लिये रिजर्व कर लिया था ठीक उसी तरह आज उन आरक्षित जातियों के पांच प्रतिशत बुद्धिजीवी सदा सदा के लिये अपनी आगे की पीढ़ियों के लिये ये पद रिजर्व करना चाहते हैं। उन जातियों के पंचान्नबे प्रतिशत श्रमजीवियों को न कोई लाभ मिला न भविष्य में मिलेगा। अतः जातीय आरक्षण समाप्त करके श्रम की मांग और मूल्य को जोर से बढ़ने दिया जाये तो जातिवाद का स्वरूप बदल सकता है।

प्रश्न– आप हमेशा ही संघ की आलोचना करते रहते हैं जबकि संघ ने पूरी ताकत से हिन्दुत्व की सुरक्षा की है। आप ऐसा क्यों करते हैं?

उत्तर– स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दुत्व को सुरक्षा की जरूरत थी जो संघ ने दी। उसके लिये संघ को भरपूर समर्थन मिला। दुनिया में हिन्दुओं की तर्क शक्ति अन्य समुदायों की अपेक्षा बहुत मजबूत मानी जाती है। स्वतंत्रता के बाद संघ अपनी सांस्कृतिक दिशा को छोड़कर राजनैतिक दिशा की ओर चल पड़ा। उचित होता कि स्वतंत्र भारत में हिन्दू मुसलमानों और इसाइयों से प्रतिस्पर्धा करके उन्हें पछाड़ देता। किन्तु संघ परिवार अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिये हिन्दुओ को लाठी डंडा तक सीमित रखा। यह संघ की भूल थी। यह लाठी डण्डा स्वतंत्रता के पूर्व तो उचित भी था किन्तु स्वतंत्रता के बाद भी उसी को कायम रखना संघ की भूल थी। यदि मैं भी संघ की छत्रछाया से बाहर नहीं निकला होता तो मैं भी उसी तरह लाठी डंडे तक सीमित रह जाता और आज जो विश्व स्तर पर चुनौती दे रहा हूँ वह नहीं कर पाता। हिन्दुओं को भावना प्रधान की जगह विचार प्रधान होना चाहिये। भारत में समान नागरिक संहिता की मांग संघ की थी। किन्तु संघ ने सत्ता के लालच में यह मांग किनारे करके मंदिर की मांग पकड़ ली। मंदिर की मांग की अपेक्षा समान नागरिक संहिता की मांग ज्यादा उपयोगी थी। आज भी यदि हिन्दू अपने अपने भावनात्मक मुद्दों से उपर उठकर वैचारिक धरातल पर मजबूती से चल निकले तो मुसलमान और इसाई हिन्दुओं की बौद्धिक क्षमता का मुकाबला नहीं कर सकते। मेरा स्पष्ट मत है कि या तो संघ अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा को छोड़ दे अन्यथा हमारा कर्तव्य है कि हम मिलजुलकर उसके राजनैतिक स्वार्थ के खिलाफ अभियाान छेड़ दें।

प्रश्न– सरकार तो परिवार व्यवस्था को हर जगह मानती है। फिर आप कैसे कह सकते हैं कि सरकार परिवार व्यवस्था को नहीं मानती।

उत्तर– भारत का संविधान व्यक्ति और समाज को तो मानता है किन्तु परिवार को संवैधानिक इकाई नहीं मानता। संविधान में जाति, धर्म, क्षेत्र शब्द भी हैं और उनके अधिकारों की भी विवेचना है किन्तु न परिवार की कोई व्याख्या है न ही परिवार के अधिकार। आपको परिवार बनाने की छूट है। उस छूट के अन्तर्गत आपको कानूनी अधिकार प्राप्त हैं, संवैधानिक नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त हैं। सरकार ने प्रत्येक व्यक्ति को संवैधानिक अधिकार भी दे दिये और सामाजिक अधिकार भी। जबकि संवैधानिक और सामाजिक अधिकार परिवार को देने चाहिये थे, व्यक्ति को नहीं। जब व्यक्ति परिवार का सदस्य है तो उसकी व्यक्तिगत पहचान परिवार के साथ जुड़ गई। यह कैसे संभव है कि परिवार का कोई सदस्य बिना परिवार की सहमति के किसी अन्य वैसे ही संगठन की सदस्यता ग्रहण कर ले। लेकिन आज हमारे परिवार की महिलाऍं बिना पारिवारिक सहमति के स्वतंत्र महिला संगठनों की सदस्यता ग्रहण कर रही हैं। कई बेटियां तो बिना परिवार की सहमति के प्रेम विवाह तक कर रही हैं, जो पूरी तरह पारिवारिक अनुशासन के विरूद्ध है। किन्तु चूंकि हमारा संविधान प्रत्येक व्यक्ति को संवैधानिक और सामाजिक अधिकार देता है इसलिये उनके ऐसे कार्य पर कोई रोक भी नहीं लग सकती। यह विषय बेहद पेचीदा है। जो व्यक्ति स्वतंत्र है और किसी परिवार का सदस्य नहीं है उसके तो संवैधानिक अधिकार भी होंगे और सामाजिक भी किन्तु परिवार का सदस्य होते हुए सबके अलग अलग अधिकार न होकर सामूहिक ही होंगे। और प्रश्न होने पर विस्तृत चर्चा संभव है।

प्रश्न– आजकल इतने प्रयासों के बाद भी महिलाऍं सार्वजनिक मंचों पर नहीं दिखतीं। यह समाज के लिये अच्छा है या बुरा।

उत्तर– यह सही है कि भारत में इतने प्रयासों के बाद भी महिलाऍं सार्वजनिक मंचों पर नहीं दिखतीं। साथ ही पूरे भारत में हो रही लाखों किसान आत्म हत्याओं में भी महिलाऍं नहीं दिखतीं। दोनों बाते सच हैं क्योंकि पुरूष समझता है कि घर की आर्थिक चिन्ता उसका दायित्व है और घर की महिलाऍं समझती हैं कि घर की आंतरिक व्यवस्था उनका दायित्व है। यही कारण है कि दो तीन प्रतिशत आधुनिक महिलाओं तथा राजनेताओं के लाख प्रयत्नों के बाद भी भारत की महिलाऍं अनावश्यक मंचों से दूर रहती हैं। सच्चाई यह है कि कुछ महिलाऍं तथा पुरूष भारत में महिला और पुरूष के बीच ध्रुवीकरण कराकर वर्ग संघर्ष के लिये उतावले हैं जिससे कि उन्हें कुछ लाभ मिले। भारतीय महिलाऍं सब समझती हैं। मेरे विचार में सार्वजनिक मंचों पर महिलाओं का कम आना न अच्छा है न बुरा क्योंकि महिला कोई अलग वर्ग है, ही नहीं जिसे समाज से अलग रखकर देखा जा सके। जो महिलाएं परिवार की सहमति से अथवा स्वतंत्र रूप से भी सार्वजनिक मंचो मे जाना चाहती है, उन्हे छूट है, और जो न जाना चाहती है उन्हे भी छूट है। सरकार और राजनैतिक दल चाहे कितना भी जोर लगा ले भारत की महिलाएं सब समझती है कि किसका क्या स्वार्थ है